संस्मरण

प्रशासनिक सेवा में रहते और सेवानिवृत्ति के बाद भी अनिल बोर्दिया जी ने अनेक महत्त्वपूर्ण परियोजनाओं की संकल्पना की और उन्हें धरातल पर उतारा। उन्होंने अपने बहुचर्चित प्रयोगों में समाज से सरोकार रखने वाले शिक्षाविदों, साहित्यकारों और समाजसेवियों को जोड़ा। इसी वजह से राजस्थान के शैक्षिक माहौल में नई सरगरमी पनपी और तमाम शैक्षिक प्रयोग संभव हो पाए।

श्री अनिल बोर्दिया
क्रान्तदर्शी और समर्पित शिक्षाकर्मी

ललित किशोर लोहमी

अनिल बोर्दिया भारतीय प्रशासनिक सेवा के वरिष्ठ और कुशल प्रशासक थे। उन्होंने अपने कार्यकाल में कई पदों पर कार्य किया। विकास के कई क्षेत्रों में उन्होंने अपनी योग्यता दिखाई, किन्तु जिस क्षेत्र में उनका मन पूरी तरह से रम गया और आगे चलकर जिस तरह से उनका उससे तादात्मय ही हो गया, वह था - शिक्षा का क्षेत्र। वैसे अपने प्रशासनिक कार्यकाल के प्रारंभिक दिनों में वे राजस्थान के प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा निदेशालय के निदेशक हो गए थे। शिक्षा से उनके रिश्ते की यही शुरुआत थी। वे एक तरफ स्कूलों के शैक्षिक स्तर में सुधार चाहते थे और दूसरी तरफ अध्यापकों की योग्यता, निष्ठा और उत्साह में वृद्धि चाहते थे। वे स्वयं एक ऊर्जावान प्रशासक थे तो अध्यापकों के कार्य कौशल में भी ऊर्जा और समर्पण का सपना देख रहे थे। उन्होंने एक साथ विद्यालयों एवं अध्यापकों की उन्नति की दिशा में कई कार्यक्रमों की शुरुआत की थी। सारे निदेशालय को उनके आते ही यह अहसास हो गया था कि एक अत्यंत संवेदनशील निदेशक ने राजस्थान में शिक्षा की बागडोर संभाल ली है।

शिक्षा के क्षेत्र में उतरने के साथ ही उनके मन में शिक्षा के प्रति एक जबरदस्त आस्था विकसित हो गई थी। वे शिक्षा में समाज की हर समस्या का समाधान देखने लगे थे। शिक्षा में उनकी दृष्टि बहुत व्यापक थी और वे स्कूली शिक्षा से बाहर जन-जन की शिक्षा और उससे एक व्यापक सामाजिक नवजागरण की संभावना का सपना देखने लगे थे। बीकानेर में शिक्षा निदेशक रहते हुए उन्होंने बीकानेर प्रौढ़ शिक्षण समिति की स्थापना की और उस समिति का रिश्ता उन्होंने दुनिया के दिग्गज शिक्षाविदों के साथ जोड़ दिया। ये उनके ही उत्साह का परिणाम था कि समिति अपने जन्म के साथ ही कारगर कार्यक्रमों की शुरुआत कर सकी थी।

उनकी शिक्षा-दृष्टि अत्यंत व्यापक थी और वे शिक्षा को निरंतर गतिशील बनाए रखने के लिए नवाचारों में बहुत विश्वास रखते थे। निरंतर एक के बाद एक नवाचार करते चले गए। उनकी पैनी दृष्टि यह देख रही थी कि तीन-चौथाई निरक्षर व्यक्तियों की भीड़ के

परिचय

राजस्थान के शिक्षा विभाग में अतिरिक्त निदेशक रहे एवं विशेषाधिकारी (शिक्षा), राजस्थान सचिवालय से सेवानिवृत्त हुए। राजस्थान की प्रमुख शैक्षिक पहलों - लोकजुम्बिश, शिक्षाकर्मी एवं दूसरा दशक - की संकल्पना एवं क्रियान्वयन में सक्रिय रूप से जुड़े रहे हैं।

साथ यह जनतंत्र लड़खड़ाता हुआ चल रहा है। इसका स्थायित्व और सफलता बिना शिक्षित नागरिकों के संभव नहीं है। इस समय वे दिल्ली में शिक्षा एवं संस्कृति मंत्रालय में संयुक्त सचिव थे। उनको लगा था कि इतनी बड़ी समस्या को हल करने के लिए एक सुचिंतित देशव्यापी अभियान तुरंत आरंभ होना चाहिए। वे मन ही मन एक राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम पर विचार करने लगे और अपने इस विचार-प्रवाह में देश के प्रबुद्ध शिक्षाविदों, समाजशास्त्रियों और रचनारत साहित्यकारों से सलाह-मशविरा ऐसा शुरू किया कि वह निरंतर चलता रहा। यह उनकी कार्यशैली का एक नायाब नमूना था कि वे एक साथ हजारों लोगों को किसी विचार विशेष पर संवाद के लिए एकजुट कर लेते थे। राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम को विकसित करने के लिए उन्होंने ऐसे ही विचार यज्ञ का आयोजन किया कि हजारों-हजार प्रबुद्ध लोगों के मशविरे से वह तैयार हो सका और फिर भी इसका पूरा प्रारूप लेकर तत्कालीन प्रधानमंत्री मोरारजी भाई देसाई से मिले। मोरारजी भाई ने न केवल सहमति जताई बल्कि तुरंत एक राजनैतिक समर्थन और संकल्प के प्रति उनको आश्वस्त किया। बोर्दिया जी जानते थे कि बिना 'पॉलिटिकल विल' के इतना बड़ा काम प्रारंभ नहीं किया जा सकता।

वे यह भी जानते थे कि ऐसा काम केवल नारेबाजी से ही संभव नहीं है। राजनैतिक इच्छाशक्ति के बिना एक बड़े कार्यक्रम को प्रारंभ करना और फिर उसे प्रभावी तरीके से संचालित करना आसान नहीं होता है। अतः उन्होंने पूरी तैयारी के साथ राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम का शुभारंभ किया। उन्होंने प्रौढ़ शिक्षा के इस महत्त्वपूर्ण अभियान के साथ एक ऐसा वातावरण देश में तैयार किया, जिससे हर व्यक्ति साक्षर और शिक्षित होने की दिशा में आगे बढ़े। सारे देश में प्रौढ़ शिक्षा की एक बहुत बड़ी मुहिम सरकार द्वारा चलाई गई, जिससे देश के कोने-कोने में हर व्यक्ति को साक्षर करने का अभियान चल पड़ा। सरकार के विभिन्न विभाग, प्रशासन आदि सबको मुस्तैद किया गया और इस अभियान से जोड़ा गया। यह एक बहुत बड़ी मुहिम थी, जिसका परिणाम दूरगामी हो सकता था। यह मुहिम चली, किंतु कई बातों के कारण इसमें वह सफलता नहीं मिल पाई, जिसकी आशा थी। किंतु चेतना की एक नई लहर तो चल ही गई। इसी प्रसंग में प्रौढ़ शिक्षा का एक नया स्वरूप भी गठित हुआ जिसमें साक्षरता के साथ क्रियान्विति जुड़ी और क्रियात्मक साक्षरता के रूप में प्रौढ़ शिक्षा का एक नया रूप देश के सामने आया। ऐसा लगा कि गांव का हर व्यक्ति अब विकास के कार्य से सीधा जुड़ सकेगा।

यह क्रम तो चल ही रहा था कि इस बीच प्राथमिक शिक्षा की ओर पुनः बोर्दिया जी की दृष्टि गई और उन्होंने देखा कि यह क्षेत्र भी एक परिवर्तन और नए प्रकार की ऊर्जा चाहता है। यदि लाखों बच्चे शीघ्र ही ठीक प्रकार शिक्षित नहीं हुए तो निरक्षर लोगों की फौज बढ़ती चली जाएगी एवं जनतंत्र की जड़ें सूखने लगेंगी और व्यक्ति का स्वयं का विकास भी अवरुद्ध हो जाएगा। सरकार ने गांव-गांव में स्कूल खोलकर यह उम्मीद की थी कि सभी विद्यार्थी उन स्कूलों में आ जाएंगे और शिक्षा पाएंगे। किंतु यह काम आसान नहीं था। देश में असंख्य ऐसे गांव हैं जहां बालक-बालिकाओं की संख्या तो बहुत थी किंतु उनके यहां स्कूल होते हुए भी वर्षों से कोई अध्यापक कई आकर्षण देने के बाद भी नहीं पहुंच पाया। ऐसे असंख्य गांवों में शिक्षा की कोई किरण पहुंच ही नहीं पाई। वहां के नागरिक अपने भाग्य को कोसते थे कि उनके बच्चे उस गांव में क्यों पैदा हुए। इसका कोई हल सरकार को दिखाई नहीं देता था।

बोर्दिया जी की दृष्टि भला इस तथ्य को कैसे अनदेखा करती। उन्होंने समस्याओं के मूल में जाकर उन गांवों की विषम परिस्थितियों का विश्लेषण कर यह पाया कि वहां न पीने को मीठा पानी था, न मकान, न आवागमन के साधन और न कोई सुविधा। तब ऐसे लाखों बच्चों का क्या होगा जो इन स्थानों में रहते हैं। उन्होंने सोचा कि जब तक उसी गांव के किसी भी व्यक्ति को अध्यापक या अध्यापिका के रूप में नहीं ढाला गया तो इस समस्या का कोई हल संभव नहीं है। किंतु दुर्भाग्य से गांव में पढ़ा-लिखा व्यक्ति पीढ़ियों से नहीं था। उनके मन में यह बात बार-बार कौंधती रही कि क्या गांव के ही किसी मामूली पढ़े-लिखे युवक-युवती को अध्यापक के रूप में नहीं ढाला जा सकता है? यह बहुत ही दुष्कर कार्य था। किसी बहुत कम पढ़े-लिखे व्यक्ति को, बच्चों को कक्षा-5 तक की योग्यता विकसित करने के लिए अध्यापक के रूप में तैयार करना अपने में एक बहुत बड़ी चुनौती थी। बोर्दिया जी ने इस चुनौती को स्वीकारा और एक छोटे से स्थान अजमेर की सिलोरा पंचायत समिति से यह अनूठा प्रयोग प्रारंभ किया। इस प्रयोग की बहुत आलोचना हुई। इसकी सफलता में अधिकांश लोगों को संदेह था कि इन अधकचरे व्यक्तियों को एक सफल अध्यापक

के रूप में कैसे ढाला जा सकता है। किंतु शैक्षिक पद्धतियों का एक नवाचार प्रारंभ हुआ। सैद्धांतिक और व्यवहारिक पद्धतियां किस प्रकार जोड़ी जाएं कि अध्यापक सरलता से उन्हें कक्षा में प्रयुक्त कर सकें। इसने शिक्षण पद्धति और प्रशिक्षण की प्रचलित पद्धतियों पर एक प्रश्नचिह्न खड़ा कर दिया और इस क्षेत्र में चिंतन की एक नई पहल प्रारंभ हुई। यह प्रयोग पूरी तरह सफल रहा।

वे दृश्य देखने लायक होते थे जब गांव के ही युवक-युवती अपने छोटे भाई-बहिनों का हाथ पकड़े और कभी पीठ पर लादे स्कूल में लेकर आते और उन्हें पढ़ाते। जब बच्चे गीत गुनगुनाते हुए घर जाते और अपने माता-पिता को विद्यालय में होने वाली गतिविधियों के बारे में बताते तो वे सब गद्‌गद् हो उठते। शिक्षा के रूढ़ अर्थ से अलग हटकर गांव वालों ने शिक्षा को समझना प्रारंभ किया। अब आवश्यकता इस बात की थी कि यह जांचा जाए कि सामान्य विद्यालयों के बच्चों और गांव के इन स्कूलों के बच्चों में तुलनात्मक दृष्टि से शैक्षिक उपलब्धि कितनी हुई है। एक ओर एस.टी.सी. ट्रेंड, बहुत अच्छा वेतन पाने वाले अध्यापक थे और दूसरी ओर वे गांव के नए ढाले गए अध्यापक थे, जो बच्चों को स्कूलों की ओर आकर्षित करते थे। पढ़ने को प्रेरित करते थे और पढ़ना-लिखना सिखाते भी थे। आश्चर्य तब हुआ जब राष्ट्रीय स्तर की मूल्यांकन समितियों ने भी इस बात की पुष्टि की कि इन बच्चों की उपलब्धि दूसरे बच्चों से किसी भी दृष्टि से कम नहीं थी। इन परिणामों ने शिक्षा में एक क्रांति मचा दी और लोगों को इस दिशा में सोचने के लिए बाध्य किया कि शिक्षण पद्धतियों को कैसे व्यवहारिक बनाया जाए। यह प्रयोग इतना सफल हुआ कि राजस्थान में तो फैला ही किंतु अन्य राज्यों में भी इस प्रयोग को अलग-अलग दृष्टि से अलग-अलग रूप में अपनाया गया।

यह बोर्दिया जी की ही एक सफलता थी, जिसने शिक्षाविदों को भी चिंतन के लिए झकझोर दिया। यह प्रयोग रुका नहीं और विस्तृत हुआ। किंतु इस बहुचर्चित, बहुप्रशंसित सफल प्रयोग का, जिसमें शैक्षिक सुधार की अनन्त संभावनाएं थीं, अकाल अंत हो गया। इसमें सरकार को नई प्रकार की संभावनाएं दिखने लगीं। इसके मर्म को न जानकर या जानते-बूझते, इस प्रयोग का विस्तार सारे राज्य में किया गया। सरकार को लगा कि गांव वालों में शिक्षा की जो प्यास जगी है उसकी तुष्टि के लिए प्राथमिक विद्यालय के लिए जो मांग जोर शोर से उठी है उसे शिक्षाकर्मी विद्यालय के रूप में खोलकर पूरी की जा सकती है। इसमें कम वेतन पाने वाले, केवल मानदेय के रूप में कुछ राशि प्राप्त कर कार्य करने वाले शिक्षाकर्मी लगाकर पूरा किया जा सकता है। यह 'हल्दी लगे न फिटकरी' वाला मामला है। फलतः इसका भरपूर विस्तार हुआ। जो शिक्षाकर्मी केवल दुरूह स्थानों के लिए तैयार किए थे, उनके स्थान पर किसी भी जगह शिक्षाकर्मी विद्यालय खोलकर शिक्षाकर्मी को बहुत कम वेतन देकर उसका शोषण प्रारंभ हो गया। शिक्षाकर्मी बोर्ड बन गया, अधिकारी लगा दिए गए और इस तरह एक सफल प्रयोग विकृत होकर, 'खर्चा बचाओ' योजना में परिवर्तित हो गया। अच्छी योजना भी किस प्रकार विकृत हो सकती है उसका यह एक उदाहरण है। उन्होंने शिक्षाकर्मी योजना का पूरा विश्लेषण किया। उन्हें लगा कि जब तक शैक्षिक प्रशासन की दृष्टि और स्वरूप नहीं बदलेगा, तब तक शिक्षा में कोई सुधार नहीं हो सकता। जब तक उसमें ऊपर से नीचे तक आमूल परिवर्तन नहीं होगा, कोई शैक्षिक सुधार पनप नहीं सकता। जब तक अफसर, मातहत, सुपरवाईज़र, शिक्षा निरीक्षक आदि के नजरिए में परिवर्तन नहीं होगा और वे एक दरी पर बैठकर सब लोगों के साथ मिलकर काम को नहीं बढ़ाएंगे तब तक हुक्म देने या धौंस जमाने से शिक्षा में कोई सुधार नहीं हो सकता। जब शिक्षक यह समझने लगे कि मेरे सुपरवाईजर मेरी मदद के लिए हैं, मेरी कमियां दूर करने के लिए हैं, मेरे साथ बैठकर मेरा मार्गदर्शन करते हैं तब तक कोई भी शिक्षा सफल नहीं हो सकती। यह बहुत बड़ा काम था। शिक्षा के उच्चतम अधिकारी से लेकर नीचे के अधिकारी के मन में यह जमाना कि शिक्षा मित्रवत् रहने से ही बढ़ती है, डंडे के बल पर नहीं। साथ ही सरकारी आदेशों मात्र से पठन-पाठन की गुणवत्ता में कोई असर नहीं पड़ता। जब तक गांव वालों को भी इस कार्य में नहीं जोड़ा जाएगा तब तक सार्वजनीन शिक्षा नहीं हो सकती। समाज इतना अलसाया हुआ है कि उसमें थोड़ी भी जुंबिश पैदा करने के लिए भगीरथ प्रयास करना होगा।

उक्त दृष्टिकोण को लेकर एक बहुत बड़ा नवाचार बोर्दिया जी ने प्रारंभ किया, जिसका नाम था 'लोक जुंबिश'। यह लोक की भागीदारी और शिक्षा के सभी सहयोगियों का एक मिला-जुला प्रयास था कि शिक्षा के वर्तमान स्वरूप में कोई गुणात्मक परिवर्तन लाया जाए। सब बच्चे स्कूल आएं, विद्यालयों में बने रहें और स्तरीय शिक्षा प्राप्त कर सकें।

पूरी तरह से रूढ़ हो चुके दृष्टिकोण में ऐसा परिवर्तन एक बहुत कठिन और श्रमसाध्य काम था। इसे बदलना बहुत कठिन था। मगर ऐसे कठिन काम को हाथ में लेने का संकल्प एक ऐसा आदमी ही कर सकता था जो अपनी धुन का धनी था और अपने काम के प्रति अटल आस्थावान था। इसी आदमी का नाम अनिल बोर्दिया था।

बोर्दिया जी का विश्वास था कि शिक्षा के समस्त कार्यक्रमों में गांव वालों की सक्रिय सहभागिता से गुणात्मक परिवर्तन सहज संभव है। इसके लिए एक बहुत बड़े नियोजन की जरूरत थी, जिसमें विद्यालय प्रबंधन, प्रशिक्षण, लोक-सहभागिता आदि के मुद्दों पर पूरी योजना बने और सबकी सक्रिय सहभागिता रहे। यह प्रयोग प्रारंभ हुआ, बहुत परिश्रम से नई पाठ्यपुस्तकें तैयार की गईं, नए प्रशिक्षण हुए, गांव वालों के प्रशिक्षण भी आयोजित हुए, अध्यापकों को उन्हीं के विद्यालयों में जाकर समय पर सम्बल देना, विद्यालयों में आवश्यक पठन-पाठन सामग्री तैयार करना आदि सारे कार्य प्रारंभ हुए। यह राजस्थान के लगभग तेरह जिलों में बहुत सफलतापूर्वक चला। गांवों और स्कूलों में एक नई फिज़ां आई। स्कूल और गांव निर्जीव न रहकर आकर्षण का केंद्र बनते चले गए। पुरानी रूढ़ियों को समाप्त करना और नए संस्कार डालना आसान काम नहीं था। फिर जनतंत्र में राजनैतिक इच्छाशक्ति बहुत महत्त्वपूर्ण होती है।

इसी बीच केंद्रीय सरकार ने जिलेवार एक नई शिक्षा योजना प्रारंभ की, जिसका नाम था डी.पी.ई.पी.। यह लोक जुंबिश का ही एक दूसरा स्वरूप था। उसकी बहुत-सी अच्छी बातें इसमें ले लीं गई थीं। धनराशि भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध करा दी गई। सब कुछ ठीक था बस लोक जुंबिश की मूल भावना, उसकी आत्मा इसमें नहीं आ पाई। यह प्रयोग अन्य रूपों में चला, किंतु इसकी मूल आत्मा वह नहीं रही। वे बार-बार सोचते थे कि क्या कुछ ऐसे किशोर-किशोरी गांव में तैयार किए जा सकते हैं जो स्वयं तो अपने व्यक्तित्व को बढ़ाएं साथ ही जनतंत्र की सफलता के लिए जिस तरह के व्यक्तियों की जरूरत होती है, समाज में जिस परिवर्तन की अपेक्षा है उसके अनुरूप कार्य कर सकें। गांव में ऐसे कई किशोर-किशोरी जो 10-12 वर्ष से लेकर 20 वर्ष तक के उपलब्ध हैं जिनमें आगे बढ़ने की और कुछ कर गुजरने की एक ललक हो, क्या उन्हें इस लायक बनाया जा सकता है कि आज की प्रमुख समस्याओं से वे कुशलतापूर्वक जूझ सकें और गांव में विकास का एक नया माहौल पैदा कर सकें। ये उम्मीद बहुत कम थी कि अधिक उम्र के लोग इसमें सम्मिलित हो सकते हों किंतु 10-12 वर्ष से लेकर 20 वर्ष तक के इन किशोर-किशोरियों में एक ऐसी ऊर्जा है कि यदि इसका सही उपयोग हो सके तो जनतंत्र का सही रूप धीरे-धीरे देखने को मिल सकता है। पठन-पाठन, स्वास्थ्य, सामुदायिक सहयोग, समाज की विषमताएं, शोषित वर्ग की पीड़ाएं आदि से यदि इस आयु वर्ग को गांव वालों को साथ लेकर जूझना सिखाया जाए तो ये भविष्य में परिर्वतन के अग्रदूत बन सकते हैं। इसी विचार से एक नया कार्यक्रय बोर्दिया जी ने प्रारंभ किया, जिसको उन्होंने नाम दिया 'दूसरा दशक'। अर्थात् लगभग 10-11 वर्ष से 20-25 वर्ष तक के किशोर-किशोरियों का कार्यक्रम। यह एक नए भारत के निर्माण का कार्यक्रम था, जिसके पीछे बहुत दूरदृष्टि थी। इन सबका कुशल प्रबंधन करना, कार्यकर्ताओं को जुटाना, गांव का सहयोग प्राप्त करना बहुत टेढ़ा काम था, जिसे बोर्दिया जी सरीखा समर्पित व्यक्ति ही कर सकता था। उन्होंने इसे किया और गांव-गांव में इसके अच्छे परिणाम देखने को मिले। आज राजस्थान में इन नए ऊर्जावान प्रतिभाशाली किशोर-किशोरियों का एक ऐसा झुंड तैयार हो गया है जो विकास के हर क्षेत्र में कुछ काम करने को आतुर है और समाज को नई चेतना देने में समर्थ है। यह कार्यक्रम धीरे-धीरे जड़ जमा रहा है और इसके अच्छे परिणाम देखने को मिले हैं। यह सब कुछ चल ही रहा था कि इसी बीच शिक्षा का वह क्रान्तदर्शी हमसे छिन गया और सदा के लिए मौन हो गया। किंतु उसने शैक्षिक चिंतन को जो एक नई दिशा दी, शैक्षिक आयोजनों में नवाचार प्रारंभ किए और स्वयं अपना जीवन इसके लिए होम कर दिया हो, ऐसे व्यक्ति बिरले ही होते हैं। आज हम जब उनकी शैक्षिक नवाचारों की यात्रा को देखते हैं तो लगता है इतने कुछ नए विचार उन्होंने शिक्षा जगत को दिए हैं जिनसे किसी न किसी रूप में समाज लाभान्वित हो रहा है। निस्संदेह बोर्दिया जी स्वयं सच्चे अर्थों में एक समर्पित और क्रान्तदर्शी शिक्षाकर्मी थे। हम सभी उन्हें श्रद्धांजली अर्पित करते हैं। ◆